प्रथमावृत्ति

मूल्य

॥=)

श्रीरामकिशोर गुप्त द्वारा साहित्य प्रेस,

चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित,

तथा साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)

द्वारा प्रकाशित ।

प्रकाशक के दो शब्द

यूरोप की उन्नत भाषाओं में ऐसी अनेक सस्ती और उपयोगी पुस्तक-मालाएँ प्रकाशित होती हैं जिनके द्वारा कथा, कहानी, काव्य, नाटक, उपन्यास आदि जैसे सुकुमार विषयों से लेकर इतिहास, दर्शन, गणित, भौतिक विज्ञान आदि तक के गहन विषयों को सरल और सुबोध रूप में पाठकों के निकट पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है। हिन्दी में हमने इसी अभाव की पूर्त्ति के लिए साहित्य-मणि-माला का आयोजन किया है।

इस माला में लब्ध प्रतिष्ठ देशी तथा विदेशी लेखकों की उच्च कोटि की रचनाएँ तथा, जीवनचरित्र, इतिहास, विज्ञान, ललितकला आदि के उत्तमोत्तम ग्रन्थ गुम्फित किए जायँगे।

हमें आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि हमारे पाठक इस विराट आयोजन में हमारा हाथ बंटावेंगे। अच्छे और सस्ते साहित्य की सृष्टि वास्तव में पाठकों पर ही अवलम्बित है। अँगरेजी में साधारण कोटि की अच्छी सी पुस्तक के हजारों पाठक मिल जाते हैं। हमें यदि अपनी मणि-माला के कुछ सौ पाठक भी मिल गए तो हमें विश्वास है कि हम हिन्दी साहित्य को कितने ही अमूल्य रत्न प्रदान करने में समर्थ हो सकेंगे।

+ + +

'झंकार' माला की प्रथम मणि है। यह गुप्तजी की कृति है—इसके सम्बन्ध में इतना ही कहना यथेष्ट

है। 'झंकार' में कवि के आज से चौदह पन्द्रह वर्ष पूर्व तक के गीतों का संग्रह है। आशा है हमारे प्रेमी पाठक इसे पाकर पूर्ण सन्तुष्ट होंगे।

माला की प्रत्येक पुस्तक विषय के अनुसार अस्सी से दो सौ पृष्ठ तक की होगी। सुन्दर जिल्द युक्त प्रत्येक पुस्तक का मूल्य ॥=) होगा। तिस पर भी जो सज्जन ७॥) भेज कर बारह पुस्तकों के ग्राहक होंगे उन्हें पोस्टेज और पैकिंग न देना पड़ेगा। आशा है हिन्दी के प्रेमी पाठक माला के ग्राहक बनकर हमारी यह सेवा स्वीकार करेंगे।

गंगा-दशहरा
संवत् १९८६

प्रकाशक

सूची

निर्बल का बल	११	कृपा-कौमुदी	४८
झंकार	१२	नटनागर आज कहाँ-अटके ?	५१
विराट वीणा	१४	आमन्त्रण	५२
अर्घ	१६	आह्वान	५४
बाल-बोध	१८	आश्वासन	५९
रमा है सब में राम	२१	ध्यान	६०
बन्धन	२५	संवाद	६२
असन्तोष	२९	अनुभूति	६३
जीवन का अस्तित्व	३१	मोह	६४
प्रणाम	३४	माया	६७
यात्री	३८	क्रय-विक्रय	६९
प्रस्थान	४०	लेन-देन	७१
शरणागत	४२	यथेष्ट दान	७२
प्रभु की प्राप्ति	४३	पुनरुज्जीवित	७४
इकतारा	४७		

पुनर्जन्म	७६	कामना	१२७
दानी	७७	वाँसुरी	१२९
माधुरी	८०	आहट	१३१
स्वरभंग	८३	माला	१३४
गुञ्जार	८५	खोज	१३६
प्रवाह	८७	आँख मिचौनी	१३८
विहंगम	९०	वञ्चिता	१४०
हाट	९३	भूल भुलैयाँ	१४३
खेल	९६	ज्ञान और भक्ति	१४४
निरुद्देश निर्माण	१००	छलना	१४८
इन्द्रजाल	१०६	यथाशक्ति	१५१
स्वयमागत	१०९	असावधाना	१५३
परिचय	११३	कुहक	१५६
आय का उपयोग	११६	रङ्ग-ढङ्ग	१५७
उपहार	१२०	विश्वास	१६०
आत्म-समर्पण	१२२	उत्कण्ठिता	१६१
क्षुद्र-भावना	१२४	बस, बस	१६२

श्रीगणेशायनमः

स्वर न ताल केवल

झंकार

किसी शून्य में करे विहार ।

निर्बल का बल

निर्बल का बल राम है ।
हृदय ! भय का क्या काम है ॥

राम वही कि पतित-पावन जो
परम दया का धाम है,
इस भव-सागर से उद्धारक
तारक जिसका नाम है ।
हृदय, भय का क्या काम है ॥

तन-बल, मन-बल और किसी को
धन-बल से विश्राम है,
हमें जानकी-जीवन का बल
निशिदिन आठो याम है ।
हृदय, भय का क्या काम है ॥



झंकार

इस शरीर की सकल शिराएँ
हों तेरी तन्त्री के तार,
आघातों की क्या चिन्ता है,
उठने दे ऊँची झङ्कार।
नाचे नियति, प्रकृति सुर साधे,
सब सुर हों सजीव, साकार,
देश देश में, काल काल में,
उठे गमक—गहरी गुञ्जार।

झंकार

कर प्रहार, हाँ, कर प्रहार तू,
मार नहीं, यह तो है प्यार,
प्यारे, और कहूँ क्या तुझसे,
प्रस्तुत हूँ मै, हूँ तैयार ।
मेरे तार तार से तेरी
तान तान का हो विस्तार,
अपनी अँगुली के धक्के से
खोल अखिल श्रुतियों के द्वार ।
ताल ताल पर भाल झुका कर
मोहित हों सब बारंबार,
लय बँध जाय और क्रम क्रम से
सम में समा जाय संसार ॥

विराट-वीणा

तुम्हारी वीणा है अनमोल।
हे विराट ! जिसके दो तूँबे
है भूगोल-खगोल ॥

दया-दण्ड पर न्यारे न्यारे,
चमक रहे हैं प्यारे प्यारे,
कोटि गुणों के तार तुम्हारे,
खुली प्रलय की खोल।
तुम्हारी वीणा है अनमोल ॥

हँसता है कोई रोता है—
जिसका जैसा मन होता है,
सब कोई सुधबुध खोता है,
क्या विचित्र है बोल।
तुम्हारी वीणा है अनमोल ॥

इसे बजाते हो तुम जब लों,
नाचेंगे हम सब भी तब लों,
चलने दो—न कहो कुछ कब लों,—
यह क्रीड़ा-कल्लोल।
तुम्हारी वीणा है अनमोल ॥

——

अर्थ

कुछ न पूछ, मैंने क्या गाया,
बतला कि क्या गवाया ?
जो तेरा अनुशासन पाया
मैंने शीश नवाया ।
क्या क्या कहा, स्वयं भी उसका
आशय समझ न पाया,
मैं इतना ही कह सकता हूँ—
जो कुछ जी में आया ।
जैसा वायु बहा वैसा ही
वेणु-रन्ध्र-रव छाया;
जैसा धक्का लगा, लहर ने
वैसा ही बल खाया ।

अर्थ

जब तक रही अर्थ की मन में
मोहकारिणी माया,
तब तक कोई भाव भुवन का
भूल न मुझको भाया।
नाची कितने नाच न जानें,
कठपुतली-सी काया,
मिटी न तृष्णा, मिला न जीवन,
बहुतेरा मुँह बाया।
अर्थ भूल कर इसी लिए अब
ध्वनि के पीछे धाया,
दूर किये सब बाजे गाजे,
ढूह ढोंग का ढाया।
हृत्तन्त्री का तार मिले तो
स्वर हो सरस सवाया,
और समझ जाऊँ फिर मैं भी—
यह मैंने है गाया॥

बाल-बोध

वह बाल-बोध था मेरा ।
निराकार निर्लेप भाव में
भान हुआ जब तेरा ।
तेरी मधुर मूर्ति, मृदु ममता,
रखती नहीं कहीं निज समता,
करुण कटाक्षों की वह क्षमता,
फिरा जिधर भव फेरा;
अरे सूक्ष्म, तुझमें विराट ने
डाल दिया है डेरा ।
वह बाल-बोध था मेरा ॥

वाल-बोध

पहले एक अजन्मा जाना,
फिर वहु रूपो में पहचाना,
वे अवतार चरित नव नाना,
चित्त हुआ चिर चेरा;
निर्गुण, तू तो निखिल गुणो का
निकला वास-वसेरा ।
वह वाल-वोध था मेरा ।

डरता था मै तुझसे स्वामी,
किन्तु सखा था तू सहगामी,
मैं भी हूँ अव क्रीड़ा-कामी,
मिटने लगा अँधेरा;
दूर समझता था मैं तुझको
तू समीप हँस-हेरा ।
वह वाल-वोध था मेरा ॥

अब भी एक प्रश्न था—कोऽहं ?
कहूँ कहूँ जब तक दासोऽहं
तन्मयता कह उठी कि सोऽहं !
बस हो गया सवेरा;
दिनमणि के ऊपर उसकी ही
किरणों का है घेरा।
वह बाल-बोध था मेरा ॥



रमा है सब में राम

रमा है सब में राम,
वही सलोना श्याम।

जितने अधिक रहें अच्छा है
अपने छोटे छन्द,
अतुलित जो है उधर अलौकिक
उसका वह आनन्द।
लूट लो, न लो विराम;
रमा है सब में राम।

झंकार

अपनी स्वर-विभिन्नता का है
क्या ही रम्य रहस्य;
बढ़े राग-रञ्जकता उसकी
पाकर सामञ्जस्य।
गूँजने दो भवधाम,
रमा है सब में राम।

बढ़ें विचित्र वर्ण वे अपने
गढ़ें स्वतन्त्र चरित्र;
बने एक उन सबसे उसकी
सुन्दरता का चित्र।
रहे जो लोक ललाम,
रमा है सब में राम।

रमा है सब में राम

अयुत दलों से युक्त क्यों न हों
निज मानस के फूल;
उन्हे बिखरना वहाँ जहाँ है
उस प्रिय की पद-धूल।
मिले बहुविधि विश्राम,
रमा है सब में राम।

अपनी अगणित धाराओं के
अगणित हों विस्तार;
उसके सागर का भी तो है
कोई वार न पार।
बढ़ो बस आठों याम।
रमा है सब में राम।

झंकार

हुआ एक होकर अनेक वह
हम अनेक से एक,
वह हम बना और हम वह यों
अहा ! अपूर्व विवेक ।
भेद का रहे न नाम ।
रमा है सब में राम ।



बन्धन

सखे, मेरे बन्धन मत खोल,
आप बन्ध्य हूँ आप खुलूँ मैं,
तू न बीच में बोल ।

जूझूँगा, जीवन अनन्त है,
साक्षी बन कर देख,
और खींचता जा तू मेरे
जन्म-कर्म की रेख ।
सिद्धि का है साधन ही मोल,
सखे, मेरे बन्धन मत खोल ।

खोले-मूँदे प्रकृति पलक निज,
फिर प्रभात हो फिर रात,
परमपुरुष, तू परख हमारे
घात और प्रतिघात।
उन्हें निज दृष्टि-तुला पर तोल,
सखे, मेरे बन्धन मत खोल।

कोटि कोटि तर्कों के भीतर
पैठी तेरी युक्ति,
कोटि कोटि बन्धन-परिवेष्टित
बैठी मेरी मुक्ति।
मुक्ति से भिन्न, अकम्प, अडोल,
सखे, मेरे बन्धन मत खोल।

खींचे मुक्ति पटान्त पकड़ कर
मुक्ति करे संकेत,
इधर उधर आऊँ जाऊँ मैं
पर हूँ सजग सचेत।
हृदय है क्या अच्छा हिण्डोल,
सखे, मेरे बन्धन मत खोल।

तेरी पृथ्वी की प्रदक्षिणा
देख रहे रवि सोम,
वह अचला है करे भले ही
गर्जन तर्जन व्योम।
न भय से, लीला से हूँ लोल,
सखे, मेरे बन्धन मत खोल।

झंकार

ऊबेगा जब तक तेरा जी
देख देख यह खेल,
हो जावेगा तब तक मेरी
भुक्ति-मुक्ति का मेल ।
मिलेंगे हाँ, भूगोल-खगोल,
सखे, मेरे बन्धन मत खोल ॥

असन्तोष

नहीं, मुझे सन्तोष नहीं ।
मिथ्या मेरा घोष नहीं ।

वह देता जाता है ज्यों ज्यों,
लोभ वृद्धि पाता है त्यों त्यों,
नहीं तृप्ति-घातक मैं,
उस घन का चातक मैं,
जिसमें रस है शेष नहीं ।
नहीं, मुझे सन्तोष नहीं ।

झंकार

पाकर वैसा देने वाला—
शान्त रहे क्या लेने वाला ?
मेरा मन न रुकेगा,
उसका धन न चुकेगा,
क्या वह अक्षय-कोष नहीं ?
नहीं, मुझे सन्तोष नहीं ।

माँगूँ क्यों न उसीको अब,
एक साथ पाजाऊँ सब,
पूरा दानी जब हो
कोर-कसर क्यों तब हो ?
मेरा कोई दोष नहीं ।
नहीं, मुझे सन्तोष नहीं ॥

जीवन का अस्तित्व

जीव, हुई है तुझको भ्रान्ति;
शान्ति नहीं, यह तो है श्रान्ति !

अरे, किवाड़ खोल, उठ, कब से
मैं हूँ तेरे लिए खड़ा,
सोच रहा है क्या मन ही मन
मृतक-तुल्य तू पड़ा पड़ा ।
बढ़ती ही जाती है क्लान्ति,
शान्ति नहीं, यह तो है श्रान्ति !

अपने आप घिरा बैठा है
तू छोटे से घेरे में,
नहीं ऊबता है क्या तेरा
जी भी इस अन्धेरे में ?
मची हुई है नीरव क्रान्ति,
शान्ति नहीं, यह तो है भ्रान्ति !

द्वार बन्द करके भी तू है
चैन नहीं पाता डर से,
तेरे भीतर चोर घुसा है,
उसको तो निकाल घर से ।
चुरा रहा है वह कृति-कान्ति,
शान्ति नहीं, यह तो है भ्रान्ति !

जीवन का अस्तित्व

जिस जीवन के रक्षणार्थ है
तू ने यह सब ढंग रचा,
होकर यो अवसन्न और जड़
वह पहले ही कहां बचा ?
जीवन का अस्तित्व अशान्ति,
शान्ति नहीं, यह तो है भ्रान्ति !

प्रणाम

बहु कलकण्ठ खगो के आश्रय,
पोषक या प्रतिपाल प्रणाम ।
भव-भूतल को भेद गगन मे
उठने वाले शाल, प्रणाम ॥

प्रणाम

हरे भरे, आँखो को शीतल
करने वाले, तुम्हें प्रणाम,
छाया देकर पथिको का श्रम
हरने वाले, तुम्हे प्रणाम !
अटल अचल, न किसी बाधा से
डरने वाले, तुम्हे प्रणाम,
शुद्ध सुमन-सौरभ समीर में
भरने वाले, तुम्हें प्रणाम !

देने वाले औरो को ही
सारे स्वफल रसाल, प्रणाम,
भव-भूतल को भेद गगन में
उठने वाले शाल, प्रणाम ॥

व्रत में रत, आतप, वर्षा, हिम
सहने वाले, तुम्हें प्रणाम,
स्वावलम्बयुत, उन्नत भी नत
रहने वाले, तुम्हें प्रणाम ।
खींच रसातल से भी रस को
गहने वाले, तुम्हें प्रणाम,
सब कुछ करके भी न कभी कुछ
कहने वाले, तुम्हें प्रणाम ।

जन्मभूमि के छत्र, पत्रमय,
अहो समुन्नत भाल, प्रणाम,
भव-भूतल को भेद गगन में
उठने वाले शाल, प्रणाम ॥

विस्तृत शत भुज-शाखाओं से
 देने वाले वीर, प्रणाम,
हिमकण से प्रभुदत्त वज्र तक
 लेने वाले धीर, प्रणाम।
त्रिविध-कालदर्शी साक्षी-सम,
 बद्ध-मूल, गम्भीर, प्रणाम,
सभी दशाओं में सदैव ही
 परहित-हेतु-शरीर, प्रणाम।

क्रम क्रम से सर्वस्व त्याग के
 स्थाणुमूर्ति चिरकाल प्रणाम,
भव-भूतल को भेद गगन में
 उठने वाले शाल, प्रणाम॥

यात्री

रोको मत, छेड़ो मत कोई मुझे राह में,
चलता हूँ आज किसी चञ्चल की चाह मे ।
काँटे लगते है, लगे, उनको सराहिए,
कण्टक निकालने को कण्टक ही चाहिए ॥
घहरा रहे है घन चिन्ता नहीं इनकी,
अवधि न बीत जाय हाय ! चार दिन की ।
छाया है अँधेरा, रहे, लक्ष्य है समक्ष ही,
दीप्ति मुझे देगा अभिराम कृष्ण पक्ष ही ॥
ठहरो, समक्ष ही तो क्षुब्ध पारावार है,
करना उसे ही अरे ! आज मुझे पार है ।
भूत मिलें, प्रेत मिलें, वे मरे—मैं जीता हूँ;
भीति क्या करेगी भला, प्रीति-सुधा पीता हूँ ।

मौत लिए जा रही है, तो फिर क्या डर है ?
दूती वह प्रिय की है, दूर नहीं घर है।
आपको न देखा आप मैंने कभी आप में,
डूबेगा विलाप आज डूबेगा मिलाप में ॥

प्रस्थान

मैं निहत्था जा रहा हूँ इस अँधेरी रात में,
हिंस्र जीव लगे हुए हैं प्राणियों की घात में।

गूँजती गिरि-गह्वरों में गर्जना है,
विषम पथ में गर्जना है तर्जना है।
किन्तु डरूँ क्यों मैं, हे प्यारे!
तेरे पीछे जाता हूँ,
माना तुझे नहीं, पर तेरी
उज्वल आभा पाता हूँ।
विमुख करने को मुझे क्या शक्ति है उत्पात में,
मैं निहत्था जा रहा हूँ इस अँधेरी रात में।

चाहते हैं सरल कण्टक दान थोड़ा,
क्यों न दूँ इनको पदों में स्थान थोड़ा,
हिंसक पशु ये मेरे आगे
मुँह बा बा कर आते हैं,
इन पर मुझे दया आती है
दीन दाँत दिखलाते हैं।
है इन्हीं का तो अहो! यह ग्रास मेरे गात में,
मैं निहत्था जा रहा हूँ इस अँधेरी रात में।

मरण मेरे शरण आया है, न लूँ क्या?
और यह तनु दान भी उसको न दूँ क्या?
इस प्रकार हलका होकर मैं
सहज पार हो जाऊँगा,
देह नहीं हूँ, देही हूँ मैं,
तुझे शीघ्र ही पाऊँगा।
बस, मुझे विश्वास दे विश्वेश! तू इस बात में,
मैं निहत्था जा रहा हूँ इस अँधेरी रात में।

शरणागत

आया यह दीन आज चरण-शरण आया,
हाय! सौ उपाय किये फल न एक पाया।

भाल-तन्तु डाल डाल
था बुना विशाल जाल,
आप फँसा! हा कपाल!
मकड़जाल छाया,
आया यह दीन आज चरण-शरण आया।

सर्व अहङ्कार गर्व
नाथ हुआ आज खर्व,
पाऊँ अब प्रगति पर्व,
मिटे मोह-माया,
आया यह दीन आज चरण-शरण आया।

प्रभु की प्राप्ति

प्रभो, तुम्हें हम कब पाते हैं ?
जब इस जनाकीर्ण जगती मे
एकाकी रह जाते हैं ।

जब तक स्वजन सङ्ग देते हैं,
हम अपनी नैया खेते हैं,

तब तक हम तुम उभय परस्पर
नहीं कभी सुध लेते हैं ।

पर ज्यों ही नौका बहती है,
हम में शक्ति नहीं रहती है,

देख भौंर में तब हम उसको
रोते हैं चिल्लाते हैं ।
प्रभो, तुम्हें हम कब पाते हैं ?

प्रभु की प्राप्ति

जब तक भोग भोगते धन से,
और सबल रहते हैं तन से,

हम मदान्ध हम तब तक तुमको
भूले रहते हैं मन से ।

पर जब सब धन उड़ जाता है,
रोगों का दल जुड़ आता है,

तब हम तुम्हें याद कर करके,
बुरी तरह बिललाते हैं ।
प्रभो, तुम्हें हम कब पाते हैं ?

पाते हैं तुमको अनुरागी,
पर होकर भव तक के त्यागी,

देख नहीं सकते हो हममें
तुम कोई निज भागी।

तुमसे अधिक कौन धन होगा,
और कौन तुम सा जन होगा,

इसीलिए तुम-मय होकर हम
पास तुम्हारे आते हैं।
प्रभो, तुम्हे हम कब पाते है?

इकतारा

त्याग न तप केवल यह तूँबी
अब रह गई हाथ में मेरे,
आ बैठा हे राम ! आज मैं
लेकर इसे द्वार पर तेरे।
इसमें वह अभिमन्त्रित जल था,
जिसमें अभिषेकों का बल था,
पर मेरे कर्मों का फल था
वह पानी ढल गया हरे रे!
दे तू मुझको दण्ड, विधाता,
पर कोदण्ड-गुणों से दाता,
एक तार भी दे, घन त्राता
बजे वेदना साँझ-सवेरे !

कृपा-कौमुदी

जीवन-यात्रा के आतप से
मूर्च्छित है मति मेरी।
"कविर्मनीषी—!" कब छिटकेगी
कृपा-कौमुदी तेरी ?

मानवीय मानस-रस सारा—
बन बन कर श्रम-जल की धारा,
बह न जाय यों ही बेचारा,
दुस्सह है अब देरी।
"कविर्मनीषी—!" कब छिटकेगी
कृपा-कौमुदी तेरी ?

इसे प्रकाश कहूँ क्या प्यारे !
नाश करे जो नेत्र हमारे ?
दीख पड़े दिन ही में तारे !
सिर खावे चकफेरी !
"कविर्मनीषी—!" कब छिटकेगी
कृपा-कौमुदी तेरी ?

दौड़ धूप ही हाय ! यहाँ है,
मृगतृष्णा ही जहाँ तहाँ है,
"सब की मैया साँझ" कहाँ है—
सङ्ग शान्ति चिर चेरी ?
"कविर्मनीषी—!" कब छिटकेगी
कृपा-कौमुदी तेरी ?

देख रहा है तू यह सब तो,
उठ अमृतांशु कलाधर ! तब तो,
उजला करदे उसको अब तो,
जो है आप अँधेरी ।
"कविर्मनीषी—!" कब छिटकेगी
कृपा-कौमुदी तेरी

———

नटनागर आज कहाँ अटके ?

नटनागर, आज कहाँ अटके ?

रथ-सूत हुए अपने भट के,
कि फँसे युग छोर कहीं पट के,
कल-हंस हुए यमुना-तट के,
कि बनें पिक वीर किसी वट के,
नटनागर, आज कहाँ अटके ?

फिर याद पड़े टटके टटके,
व्रज-गोप-वधू दधि के मटके,
उनका कहना—'हटके ! हटके !'
उलझी-सुलझी लट के लट के,
नटनागर, आज कहाँ अटके ?

तुम चित्त चुरा कर जो चटके,
रस गोरस लूट कहीं सटके,
भटका कर तो न फिरो भटके,
हम इच्छुक है फिर आहट के,
नटनागर, आज कहाँ अटके ?

उर के न कपाट खुले खटके,
हम हार गए कब के रट के,
भव-कूप पड़े घट में लटके,
झट दो अपने गुण के झटके,
नटनागर, आज कहाँ अटके ?

——

आमन्त्रण

आओ, हृदय-दोल पर झूलो,
मेरे मानस के सहस्त्रदल, फूलो फूलो फूलो।
ऊँचे से ऊँचे जाता है,
नीचे से नीचे आता है,
यह योंही झोंके खाता है,
भावुक, इसे न भूलो,
आओ, हृदय-दोल पर झूलो।
पवन कुसुम-पट झटक रहा है,
भौंरे को यह खटक रहा है,
दोनों का मन अटक रहा है,
ऐसे में अनुकूलो,
आओ हृदय-दोल पर झूलो।

आह्वान

तू ही ऊँचा कर सकता है
नत भक्तों का भाल हरे !
पुरुष पुरातन, बन जा फिर तू
वही बाल-गोपाल हरे !
गरज उठा है गरल उगलकर
फिर वह बर्बर व्याल हरे !
रसनाएँ लपलपा रहा है
कालिय कुटिल, कराल हरे !
आ, आ, अरे, पुकार रहा है
सारा ब्रज बेहाल हरे !
गुणी गारुड़िक, तुझे गोपियाँ
पहना दें वनमाल हरे !

आह्वान

जो फन उठे, पड़े उस पर ही
अरुण चरणतल-ताल हरे !
बजा वेणु, मोहे पशु-पक्षी,
नचें मयूर-मराल हरे !
पावन वन न बहे प्लावन मे,
जला न डाले ज्वाल हरे !
भव-चक हँसते है, रोते हैं
गाय, ग्वालिनें, ग्वाल हरे !
गाली दे-देकर विद्वेषी
बजा रहे है गाल हरे !
अर्घ्य लिए आस्तिक पूजा का
सजा रहे है थाल हरे !
माधव, तेरे वंशीवट में
प्रकटें पुनः प्रवाल हरे !
बरसे रंग उमंग-संग, हाँ,
उड़े अबीर-गुलाल हरे !

सूख रही है कल कालिन्दी,
फैल रहे शैवाल हरे !
जीवन में जड़ता आई है,
विगत कमल, हत नाल हरे !
भुजगशयन, निज भूरि भुजों पर
भव-भू-भार सँभाल हरे !
कहाँ आज वह माखन-मिसरी,
मोहनभोग रसाल हरे !
दुष्ट-दलन, कपटी कुटिलों की
गले न अब यह दाल हरे !
अक्रूरप्रिय, क्रूर कंस की
चले न कोई चाल हरे !
आ जा, आ जा, तू असुरों के
उर में शर-सा साल हरे !
याद जन्म-तिथि हमें, किन्तु हम
भूले संवत्-साल हरे !

आह्वान

नटनागर, नव-नव सागर-तट
बनें सु-वास विशाल हरे !
ऋद्धि-सिद्धि की सदा वृद्धि हो,
जन हो जायँ निहाल हरे !
दुःशासन खल खींच रहा है
पाञ्चाली के बाल हरे !
पीताम्बर, झट दौड़, लाज रख,
दया-दृष्टि-पट डाल हरे !
चला कर्म-पथ पर जीवन-रथ,
मेट महा भ्रम-जाल हरे !
तेरी अमर समर-गीता पर
वारूँ लाखों लाल हरे !
वह उज्वल ज्ञानाग्नि जला दे
जुग-जुग का जंजाल हरे !
युग-युग में आने की अपनी
अटल प्रतिज्ञा पाल हरे !

लीलामय, तेरे करगत हैं
अविरत तीनों काल हरे !
साधन बनें अमृत-मंथन का
विषधर आप अराल हरे !

आश्वासन

अरे, डराते हो क्यों मुझको,
कहकर उसका अटल विधान ?
"कर्तुंमकर्तुं मन्यथाकर्तुं"
है स्वतन्त्र मेरा भगवान ।
उत्तर उसे आप लेना है,
नहीं दूसरे को देना है,
मेरी नाव किसे खेना है ?
जो है वैसा दया-निधान ?
अरे डराते हो क्यों मुझको
कहकर उसका अटल विधान ?

——

ध्यान

हे भगवान !
तेरा ध्यान—
जो करता है क्यों करता है ?
सुख के अर्थ ?
तो है व्यर्थ ।
सुख से तो पशु भी चरता है !
परमाराध्य !
सुख है साध्य ।
फिर क्या वह श्रम से डरता है ?
तुझसे, नाथ !
पाकर हाथ—
नर भव-सागर भी तरता है ॥

ध्यान

मेरा चित्त,
सौख्य निमित्त,
तेरा ध्यान नहीं धरता है ॥
पूर्णाकार—
तुझे विचार
पूर्ण भाव पर ही मरता है ॥
पुरुषोद्योग
सब सुख भोग
दे दे कर सब दुख हरता है ॥
पर परमेश !
निभृतनिवेश !
आत्म-भाव तू ही भरता है ॥

——

संघात

हम में है मचा संघात।
सब कहें अपनी, सुनें तब कौन किसकी बात;
जाय तम का द्वन्द्व कैसे मोह की है रात।
अकड़ते हैं हम कि हठ का हो रहा हिम-पात,
एक कहता है तुझे रवि अन्य सविता ख्यात।
जानता है एक उज्वल दूसरा अवदात।
उदित हो तू, ज्ञान का होजाय आप प्रभात,
देख लें सब, एक तू बहु नाम तेरे तात।

——

अनुभूति

तू है हम अन्धो का हाथी ।
हाय, हमारे नयन मुँदे हैं
मन है महा प्रमाथी ॥

तू हम सबके बीच खड़ा है,
अति उदार है, बहुत बड़ा है,
पर यह पट किस लिए पड़ा है ?
आवश्यकता क्या थी ?
तू है हम अन्धों का हाथी ।

माना, देख नहीं पाते है,
फिर भी अनुभव में लाते है,
तेरे ही गुण-गण गाते हैं,
निज मति से सब साथी,
तू है हम अन्धों का हाथी ॥

मोह

मुझको क्रीड़ा से तुमने इस
    पिंजड़े में है बन्द किया,
ख़ूब किया, आनन्द किया, पर
    द्वार खुला ही छोड़ दिया ।

मोह

लीलामय, तुम सदा यही आनन्द करो,
किन्तु दुहाई है कि द्वार भी बन्द करो।

द्वार खुला रहने से इसमें
यदि कोई घुस आवेगा,
तो यह क्रीड़ा-कीर तुम्हारा
यों ही मारा जावेगा।

इसे सोच कर डर के मारे
काँप रहा है हाय! हिया,
मुझको क्रीड़ा से तुमने इस
पिंजड़े में है बन्द किया।

झंकार

अहो दयामय, आज सहज भी ध्यान गया,
बद्ध-भाव के भान मात्र से ज्ञान गया।

द्वार बन्द करने को तो मैं
तुमसे विनती करता हूँ,
किन्तु निकल स्वच्छन्द इसी से
बाहर नहीं विचरता हूँ।

नहीं जानता किस माया ने
मेरे मन को मोह लिया,
मुझको क्रीड़ा से तुमने इस
पिंजड़े में है बन्द किया॥

माया

प्यारे, तेरी माया !

आकर लिपट गई वह मुझसे,
बाहु-पाश में बद्ध किया;
कुछ न पूँछ, क्या क्या करने को
फिर उसने सन्नद्ध किया !
भूल आपको और तुझे भी मै गया;
इतना, तेरी हँसी अन्त में हुई दया ?
और आप तू आया,
प्यारे, तेरी माया !

"मुक्त हुआ तू" कहकर मुझसे,
मेरे बन्धन खोल उठा,
विस्मित-सा "क्या बन्दी था मैं ?"
अकस्मात् यों बोल उठा !
इतनी मूर्च्छित हुई हाय ! मति मोहमयी,
तेरी करुणा पुनः हँसी मे बदल गई !
मैंने सब भर पाया,
प्यारे, तेरी माया !

——

क्रय-विक्रय

कहो तो क्रय-विक्रय हो जाय,
हम क्रेता, तुम विक्रेता हो
चलने दो व्यवसाय।

सुनो, गाँठ के पूरे है हम
किन्तु आँख के अन्धे,
सहज नही दिखलाई देते
इस धरती के धन्धे।
हानि का भय है पहले हाय!
कहो तो क्रय-विक्रय हो जाय।

जिसको निज जीवनधन देकर
मोल यहाँ हम लेंगे,
क्या उसके ऊपर अपने को
उलटा बेच न देंगे ?
किन्तु है इसका कौन उपाय ?
कहो तो क्रय-विक्रय हो जाय।

अच्छा कहो, निछावर अपनी,
हम भी जोड़ जमालें,
यदि अपने को आज गवाँदें
तो हम तुम्हें कमालें।
सोच लो है कि नहीं यह न्याय,
कहो तो क्रय-विक्रय हो जाय।

———

लेन-देन

अहो अखिल अन्तर्यामी !
तुम मुझको जो देते हो,
फिर जब वह ले लेते हो,
तब सब कोई बतलाता है
कि है भाग्य मेरा फूटा।
किन्तु कहो मेरे स्वामी !
क्या तब मैं भी यही कहूँ,
या यह कहकर शान्त रहूँ,
कि लो, आज दायित्व-भार से
अनायास ही मैं छूटा।

———

यथेष्ट-दान

दूँगा सब मैं न्यारे न्यारे।
कुछ भी पास न रक्खूँगा मैं,
तभी त्याग-रस चक्खूँगा मैं।
घर घर को, बाहर बाहर को,
आज आज को, कल कल को,
जल-थल जल-थल को, नभ नभ को,
अनिलानल अनिलानल को,
और तुम्हें क्या दूँगा प्यारे?
जो तुम माँगोगे सो दूँगा,
बदले में कुछ कभी न लूँगा।

यथेष्ट-दान

बतला दो संकोच छोड़ कर
तुम किस में प्रसन्न होगे ?
मुझसे अपने को लोगे तुम
अथवा मुझको ही लोगे ?



पुनरुज्जीवित

जी गया मैं, जी गया ।
जीवन तेरी थाती थी,
यों ही खोई जाती थी ।
मैं डरता था,
पर मरता था ।
किसने मुझे जिलाया ?
तू ने अमृत पिलाया ।
पी गया मैं, पी गया ।
यदि आवश्यकता मेरी,
वह थोड़ी या बहुतेरी,
मर्त्यलोक में,
अवनि-ओक में,

पुनरुज्जीवित

तू समझा है स्वामी !
तो है अन्तर्यामी !
धन्य है तेरी दया !
अब फिर आज्ञा दे मुझको,
मनोभीष्ट हो जो तुझको,
वही करूँगा,
नहीं डरूँगा,
सब विधि प्रस्तुत हूँ मैं
क्योंकि अमृत सुत हूँ मैं ।
मृत्यु का भय खो गया ।

पुनर्जन्म

महा काल के हाथ,
अति श्रद्धा के साथ,
मैंने तुझको नाथ !
अपना जीवन भेंट किया।
पर तू ने उसको न लिया,
यह क्या किया कि फेर दिया ?

हुई मुझी से भूल,
जीवन का क्या मूल !
वह है झड़ता फूल,
उसको औरों को दूँगा।
फल मैं आप न लूँगा—
तू लेना कृतार्थ हूँगा।

———

दानी

तू ही बुद्धि-विजेता है।
दाताओं का नायक है तू,
याचकगण का नेता है।

इतने सुफल तू ने प्रभो, इस
तुच्छ पौधे को दिये,
यह दब गया है, हो गये है
भार वे इसके लिए।
कोई कितना ले सकता है
दानी! जब तू देता है।
तू ही बुद्धि-विजेता है।

तन-मन दिया, धन-जन दिया,
जीवन दिया, साधन दिया,
बल, बुद्धि और विवेक तू ने
क्या प्रदान नहीं किया ?
दाता बन जाता है वह भी
जो जन तुझसे लेता है ;
तू ही बुद्धि-विजेता है ।

इतना अधिक तू दान करता
है, सहा जाता नहीं,
हे देव, लौटाये बिना आखिर
रहा जाता नहीं ।
ले लेता है उसी भाव से
तू ऐसा स्थिरचेता है,
तू ही बुद्धि-विजेता है ।

दानी

है ठीक ऐसा ही अधिक
मुझको मिला जो मान है,
तेरे पदों में हो उसे यह
दीन करता दान है।
अधिक क्या कहूँ भवसागर में
तू ही नौका खेता है।
तू ही बुद्धि-विजेता है॥

— —

माधुरी

संसार कब से मुग्ध होकर मर रहा है,
आह तेरी माधुरी !
कवि-चित्रकार सुवर्ण-रंजित कर रहा है,
वाह तेरी माधुरी !
योगी झलक पाकर उसी को झूमता है,
आह तेरी माधुरी !
इस घूमते भूगोल को नभ चूमता है,
वाह तेरी माधुरी !
विज्ञान उसकी खोज में सुध खो रहा है,
आह तेरी माधुरी !
उसके लिये ही ज्ञान विकसित हो रहा है,
वाह तेरी माधुरी !

माधुरी

यह कर्म का उद्योग इतना किसलिए है,
आह तेरी माधुरी !
बस जानती है भक्ति ही वह जिसलिए है,
वाह तेरी माधुरी !
हँसता, गरजता और रोता है सघन घन,
आह तेरी माधुरी !
जड़ क्यों न चेतन हो तथा चेतन अचेतन,
वाह तेरी माधुरी !
सुध भूल कर मद-मत्त मारुत डोलता है,
आह तेरी माधुरी !
प्रत्येक पत्ता ताल देकर बोलता है—
"वाह तेरी माधुरी !"
पिक कूजते, अलि गूँजते, द्रुम फूलते हैं,
आह तेरी माधुरी !
सब फूल खिल कर डालियों पर झूलते हैं,
वाह तेरी माधुरी !

अवसन्न आप निशा उषा संपन्न होती,
आह तेरी माधुरी !
ले एक से है दूसरी मोती पिरोती,
वाह तेरी माधुरी !
हाँ, धधकती है, भभकती है आग जल-जल,
आह तेरी माधुरी !
कल-कल विकल जल उछलता है चपल पल-पल,
वाह तेरी माधुरी !
जीवन मधुर हो क्यों न उसकी राह पाकर,
आह तेरी माधुरी !
उत्साह देती है उसी की चाह आकर,
वाह तेरी माधुरी !

स्वरभङ्ग

हरे राम, क्या कहूँ अलग यह अङ्ग हुआ;
टेरूँ क्यों कर तुझे ? मुझे स्वरभङ्ग हुआ ।

गूँगे की गों गों गुञ्जार,
कौन सुनेगा धीरज धार ?
किन्तु वही उसका ओङ्कार ।
उड़े व्योम में तुझे पुकार विहङ्ग हुआ,
टेरूँ क्यों कर तुझे, मुझे स्वरभङ्ग हुआ ।

झंकार

मैंने एक व्यथा व्याली,
पाली इस वट में डाली,
काली की मणि उजियाली;
लेजा, कैसे कहूँ ? कठोर प्रसङ्ग हुआ,
टेरूँ क्यों कर तुझे ? मुझे स्वरभङ्ग हुआ।

एक पुकार, एक चीत्कार,
मुझे चाहिए आज उदार !
गूँज उठे तेरा आगार,
खीज उठे तू, रीझ कहूँ मैं रङ्ग हुआ,
टेरूँ क्यों कर तुझे ? मुझे स्वरभङ्ग हुआ।

मेरा कण्ठपाश छूटे,
तेरा सन्नाटा टूटे,
मुक्ति स्वयं जनसुख लूटे,
निरख निरख तू कहे—नया यह ढंग हुआ,
टेरूँ क्यों कर तुझे ? मुझे स्वरभङ्ग हुआ।

गुञ्जार

तेरे गीतों की गुञ्जार,
मेरे शून्याकार गर्व को भर दे वारंवार ।

उठे उमंग, उठे उन्माद,
कण कण करे संग अनुनाद,
दुहरावे वह शुभ-संवाद,
फिर फिर सुने उसे संसार,
यही गर्व-गौरव हो उसका यही सफलता-सार ।
तेरे गीतों की गुञ्जार ।

गुञ्जार

पाकर ऐसा अमृत-स्रोत,
हो जावे वह ओतप्रोत,
तेरे पद-पद्मों के पोत,
तरे वहाँ मुझको भी तार,
इसी प्रकार पार होऊँ मैं ओ मेरे आधार !
तेरे गीतों की गुञ्जार ।



प्रवाह

ठहर, तनिक ठहर आह !

ओ प्रवाह मेरे,

आप मैं बहूँ न कहीं

संग संग तेरे ।

कूड़ा-कर्कट समेत,

घर चला स्वयं निकेत,

डूबे खलिहान खेत,

बहे गाँव खेरे ?

ठहर, तनिक ठहर आह !

ओ प्रवाह मेरे !

प्रवाह

पृथ्वीतल पाट पाट,
पृथुल शैल काट काट,
घाट घाट वाट वाट,
तू न चाटले रे,
ठहर, तनिक ठहर आह !
ओ प्रवाह मेरे !

सुनकर निर्मम निनाद,
पाकर विषमय विषाद,
नभ ने भी निर्विवाद,
आज कान फेरे,
ठहर, तनिक ठहर आह !
ओ प्रवाह मेरे !

आशा थी हरा हरा
होगा अब भरा भरा,
किन्तु प्रलय-मग्न धरा !
अब न और घेरे;
ठहर, तनिक ठहर आह !
ओ प्रवाह मेरे !

पकड़े कर कौन आज,
एक वही राजराज,
किन्तु अहंकार-लाज,
कौन उसे टेरे,
ठहर, तनिक ठहर आह !
ओ प्रवाह मेरे !

विहङ्गम

सौ सौ ज्ञान-तन्तुओं के मैं
जाल बराबर बुनता हूँ,
पर तू फँसता नहीं विहङ्गम,
लाख लाख सिर धुनता हूँ।

तुझे पालने ही की मेरे
मन में है अभिलाषा,
पर तू नहीं समझता मेरी
परम परिष्कृत भाषा।
मैं तो तेरी एक तान भी
तन्मय होकर सुनता हूँ,
सौ सौ ज्ञान-तन्तुओं के मैं
जाल बराबर बुनता हूँ।

पिञ्जर की रचना में कितनी
दिखला रहा कला मैं,
करता हूँ इतना श्रम पंछी,
किस के लिए भला मैं ?
तुझे चुगाने को अच्छे से
अच्छा चारा चुनता हूँ,
सौ सौ ज्ञान-तन्तुओं के मैं
जाल बराबर बुनता हूँ ।

गूँज गया मेरा मन तेरे
मृदु-मधुरोच्चारण से,
पर विश्वास नहीं करता तू
मेरा किस कारण से ?
इसी एक अपमान-वह्नि से
मैं जलता हूँ, भुनता हूँ,
सौ सौ ज्ञान-तन्तुओं के मैं
जाल बराबर बुनता हूँ ।

मुझसे उड़ कर भाग भले ही
आप अविश्वासी तू,
किन्तु अन्त में इसी विश्व का
होगा हाँ, वासी तू।
देखूँ कितने गुन हैं तुझमें
गिन गिन कर मैं गुनता हूँ,
सौ सौ ज्ञान-तन्तुओं के मैं
जाल बराबर बुनता हूँ।

——

हाट

देना पड़ा वही जो लाया,
हाँ, मैं हाट देख आया।

धर्म-कर्म का विक्रय उसमें
रूप-रङ्ग का क्रय देखा,
लाखों के दूकानदार थे,
कौड़ी कौड़ी का लेखा।
चारों ओर एक ही माया,
हाँ, मैं हाट देख आया।

दो आँखें थीं, किन्तु एक मन,
　　उसमें यही बुद्धि जागी,
मन ही एक और ले लूँ तो
　　दो होंगे सुख-दुख भागी।
सुनकर विक्रेता मुसकाया,
　　हाँ, मैं हाट देख आया।

निज जीवन का एक रत्न हँस
　　मैंने भी रख दिया वहाँ,
वह बोला—"पागल, पत्थर से
　　मन का विनिमय हुआ कहाँ?
मत छूना तुम उसकी छाया,
　　हाँ, मैं हाट देख आया।

हाट

धन देकर मन कभी न लेना,
इससे धोखा खाओगे,
पाओगे तब उसको मन के
बदले ही तुम पाओगे।
मैंने मन देकर मन पाया,
हाँ, मैं हाट देख आया !

खेल

ध्यान न था कि राह में क्या है,
काँटा, कङ्कड़, ढोका, ढेला,
तू भागा मैं चला पकड़ने
तू मुझसे मैं तुझसे खेला।

सुरभित शीतल वायु बही थी,
चारु चन्द्रिका छिटक रही थी,
रजतमयी-सी मुदित मही थी,
रत्नाकर लेता था हेला,
तू मुझसे मैं तुझसे खेला।

खेल

अब पकड़ा, अब पकड़ा पल में,
मैं पीछे दौड़ा जल-थल में,
आ आकर के भी कौशल में,
हाथ न आया तू अलबेला,
तू मुझसे मैं तुझसे खेला।

यदि तू कभी हाथ भी आया,
तो छूने पर निकली छाया,
हे भगवन्! यह कैसी माया,
इतना कष्ट व्यर्थ ही झेला,
तू मुझसे मैं तुझसे खेला।

थका अन्त में बैठ गया मैं,
लगा चाहने दैव दया से,
पाता था सब कुछ नया मैं,
लगा हुआ था मन का मेला,
तू मुझसे मैं तुझसे खेला।

क्रय-विक्रय का क्रम चलता था,
मुझको अपना श्रम खलता था,
तिस पर तेरा भ्रम छलता था,
श्रान्त-भ्रान्त मैं रहा अकेला,
तू मुझसे मैं तुझसे खेला।

बिना मोल मन मैंने जिसको
छिया कहाँ वह? दूँ अब किसको?
बेचूँ क्यों न मोलकर इसको,
मचल रहा यह, मिटे झमेला,
तू मुझसे मैं तुझसे खेला।

गाहक एक इसी क्षण आया,
मुझे देखकर वह मुसकाया,
उसने मन का मोल लगाया—
आधी दमड़ी पूरा धेला,
तू मुझसे मै तुझसे खेला।

इतने में पीछे कोई जन,
बोला—"यह तो है अमूल्य धन।"
और ले भगा मुट्ठी में मन,
तू था, थी अरुणोदय बेला,
तू मुझसे मैं तुझसे खेला।

निरुद्देश निर्माण

प्यारे, तेरे कहने से जो
यहाँ अचानक मैं आया;
यह विचित्र संसार सामने
उसी समय मैंने पाया ॥

निरुद्देश निर्माण

क्षणभंगुर होकर इसका सुख
        आकर्षक था बहुत बड़ा,
क्योंकि दुःख-समुदाय उसे था
        घेरे चारों ओर खड़ा।
स्ट-सिद्ध रत्न का मोहक था
        यह मिट्टी का एक घड़ा,
कारीगरी देख कर इसकी
        मैं चकराया, चौंक पड़ा!

तेरे बिना किन्तु मेरा मन
        घटाटोप से घबराया;
प्यारे, तेरे कहने से जो
        यहाँ अचानक मैं आया॥

जाता कहाँ, मुझे भी इसके
वैचित्र्यों ने आ घेरा,
सखे, हार कर एक ओर तब
डाल दिया मैंने डेरा ।
देख निभृत-सा बैठ गया मैं
करता हुआ ध्यान तेरा,
खींच रहा था धरती पर कुछ
रेखाएँ यह नख मेरा ।

धीरे धीरे सभी ओर से
आकर अन्धकार छाया;
प्यारे, तेरे कहने से जो
यहाँ अचानक मैं आया ॥

निरुद्देश निर्माण

दिवस गया, कब सन्ध्या आई,
　　दीप जले, कब रात हुई;
याद नहीं कुछ मुझे, न जाने
　　कहाँ, कौन सी बात हुई।
वेला की यह सारी खेला
　　बस, बिजली-सी ज्ञात हुई,
मुझे आत्म-विस्मृत करने को
　　तेरी स्मृति हे तात, हुई!

आख़िर पहली प्रभात-पूर्व का
　　पवन अपूर्व पुलक लाया,
प्यारे, तेरे कहने से जो
　　यहाँ, अचानक मैं आया॥

दीप्ति बढ़ी दीपों की सहसा,
मैंने भी ली साँस, कहा—
सो जाने के लिए जगत का
यह प्रकाश है जाग रहा !
किन्तु उसी बुझते प्रकाश में
डूब उठा मैं, और बहा,
निरुद्देश नख-रेखाओं मे
देखी तेरी मूर्ति अहा !

बतला दे ओ नटनागर, तू,
यह तेरी कैसी माया ?
प्यारे, तेरे कहने से जो
यहाँ अचानक मैं आया ॥

निरुद्देश निर्माण

रखता है कलकण्ठ सखे, तू
इसका कोमल नाम—कला,
निरुद्देश निर्माण न होगा
तो क्या इसका काम भला ?
पर इस निरुद्देश साँचे में
तू क्यों अपने आप ढला ?
शङ्का-समाधान दोनों का
यों ही चिर आलाप चला !

तू हँसता था खड़ा सामने
धन्य भाव वह मनभाया,
प्यारे, तेरे कहने से जो
यहाँ अचानक मैं आया ॥

———

इन्द्रजाल

अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया !
खोलूँ जब तक पलक, कौतुकी,
तुमने पेड़ लगाया !

भाँति भाँति के फूल खिले हैं,
रंग-रूप रस-गन्ध मिले हैं,
भौंरे हर्ष समेत हिले हैं,
गुञ्जारव है छाया !
अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया !

इन्द्रजाल

उड़ उड़कर पंछी आते हैं,
फुर फुर कर फिर उड़ जाते हैं,
क्या लाते हैं, क्या पाते हैं?
कुछ भी पता न पाया!
अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया!

यह जो अम्लमधुर फल लाया,
उसने किसे नहीं ललचाया?
वह पछताया जिसने खाया
और न जिसने खाया!
अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया!

पहले के पत्ते झड़ते हैं,
उड़ते हैं गिरते पड़ते हैं,
नव दल रत्न तुल्य जड़ते हैं,
यह क्रम किसे न भाया?
अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया?

झंकार

फल में स्वादु, सुगन्ध कुसुम में,
पर है मूल कहाँ इस द्रुम में ?
क्या कहते हो, वह है तुम में ?
राम, तुम्हारी माया !
अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया !

———

स्वयमागत

तेरे घर के द्वार बहुत है,
किसमे होकर आऊँ मैं ?
सब द्वारो पर भीड़ मची है,
कैसे भीतर जाऊँ मैं ?

द्वारपाल भय दिखलाते है,
कुछ ही जन जाने पाते हैं,
शेष सभी धक्के खाते हैं,
क्यो कर घुसने पाऊँ मैं ?
तेरे घर के द्वार बहुत हैं,
किसमे होकर आऊँ मैं ?

मुझमें सभी दैन्य दूषण हैं,
वस्त्र नहीं, क्या आभूषण है,
किन्तु यहाँ लज्जित पूषण है,
अपना क्या दिखलाऊँ मैं,
तेरे घर के द्वार बहुत हैं
किसमें होकर आऊँ मैं?

मुझमें तेरा आकर्षण है,
किन्तु यहाँ घन संघर्षण है,
इसी लिए दुर्द्धर धर्षण है,
क्यों कर तुझे बुलाऊँ मैं?
तेरे घर के द्वार बहुत हैं,
किसमें होकर आऊँ मैं?

तेरी विभव कल्पना करके,
उसके वर्णन से मन भर के,
भूल रहे है जन बाहर के,
कैसे तुझे भुलाऊँ मैं,
तेरे घर के द्वार बहुत है
किसमें होकर आऊँ मैं ?

बीत चुकी है बेला सारी,
किन्तु न आई मेरी बारी,
करूँ कुटी की अब तैयारी,
वहीं बैठ गुन गाऊँ मैं,
तेरे घर के द्वार बहुत हैं
किसमें होकर आऊँ मैं ?

झंकार

कुञ्जी खोल भीतर जाता हूँ,
तो वैसा ही रह जाता हूँ,
तुझको यह कहते पाता हूँ—
"अतिथि, कहो क्या लाऊँ मैं ?"
तेरे घर के द्वार बहुत है
किसमें होकर आऊँ मैं ?

परिचय

वार वार तू आया,
पर मैं ने पहचान न पाया।
हिम-कम्पित कृश-पाणि पसारे,
पहुँच बुभुक्षित मेरे द्वारे,
तू ने मेरा धक्का खाया,
वार वार तू आया।

दीन दृगों से निकल पड़ा तू,
बना सरस था विकल बड़ा तू,
पर मैं कौतुक से मुसकाया,
वार वार तू आया।

गलिताङ्गों का गन्ध लगाये,
आया फिर तू अलख जगाये,
हट कर मैं ने तुझे हटाया,
बार बार तू आया।

आर्त्त-गिरा कानों में आई,
वह थी तेरी आहट लाई,
पर मैं उस पर ध्यान न लाया,
बार बार तू आया।

पीड़ित के निःश्वास—अरे रे!
मैं क्या जानूँ कर थे तेरे?
मुझ पर माया-मद था छाया,
बार बार तू आया।

परिचय

अब जो मैं पहचानूँ तुझको,
तो तू भूल गया है मुझको,
मैं हूँ—जिसने तुझे भुलाया!
वार वार तू आया,
पर मैं ने पहँचान न पाया।

——

आय का उपयोग

निकल रही है उर से आह;
ताक रहे सब तेरी राह ।

चातक खड़ा चोंच खोले है,
सम्पुट खोले सीप खड़ी;
मैं अपना घट लिए खड़ा हूँ,
अपनी अपनी हमें पड़ी ।
सबको है जीवन की चाह;
ताक रहे सब तेरी राह ।

मैं कहता हूँ—मैं प्यासा हूँ,
चातक—'पी, पी'—रटता है;
व्यंग्य मानता हूँ मैं उसको,
हृदय क्षोभ से फटता है।
पर क्या वह रखता है डाह ?
ताक रहे सब तेरी राह।

मैं अपनी इच्छा कहता हूँ,
पर वह तुझे बुलाता है;
मुझसे अधिक उदार वही है,
पर भ्रम यहाँ भुलाता है।
किसको है किसकी परवाह !
ताक रहे सब तेरी राह।

हम अपनी अपनी कहते हैं,
किन्तु सीप क्या कहती है ?
कुछ भी नहीं, खोल कर भी मुँह
वह नीरव ही रहती है !
उसके आशय की क्या थाह ?
ताक रहे सब तेरी राह ।

घनश्याम, फिर भी तू सबकी
इच्छा पूरी करता है;
चातक-चञ्चु, सीप का सम्पुट,
मेरा घट भी भरता है ।
सब पर तेरा दया-प्रवाह;
ताक रहे सब तेरी राह ।

आय का उपयोग

तेरे दया-दान का मैं ने,
चातक ने भी, भोग किया;
किन्तु सीप ने उसको लेकर
क्या अपूर्व उपयोग किया—
बना दिया है मुक्ता, वाह !
ताक रहे सब तेरी राह ।

——

उपहार

मिलूँ क्या जाकर रीते हाथ ?
प्रहरी, क्या कहते हो ? मन में
क्या सोचेंगे नाथ ?

है ही क्या बस एक फूल यह
तजूँ इसे भी आज ?
अच्छी बात, इसी मिष मेरी
रह जावेगी लाज ।
चला मैं, चला न कुछ भी साथ;
मिलूँ क्या जाकर रीते हाथ ?

उपहार

मन्दिर में मणिसिंहासन पर
बैठे थे वर-वास,
विस्मय, कैसे त्यक्त कुसुम वह
पहुँचा उनके पास !
सूँघते थे गुण गौरव-गाथ;
मिलूँ क्या जाकर रीते हाथ ?

हँस बोले वे—"भेंट तुम्हारी
हुई मुझे स्वीकार,
किन्तु बनाओगे अपने को
तुम किसका उपहार ?
झुका चरणों में मेरा माथ,
मिलूँ क्या जाकर रीते हाथ ?

आत्म-समर्पण

तुम्हीं भर देते हो प्याला,
और बताने लगते हो फिर
तुम्हीं मुझे मतवाला !

छलके कमल-कोष में प्रातः-
काल मधुर मकरन्द,
और मिलिन्द रहे क्या फिर भी
स्थिर, नीरव, निष्पन्द ?
देख चन्द्र को कर सकता है
कब चकोर दृग बन्द ?
अरे, जुड़ाती है पतङ्ग को
जो दीपक की ज्वाला !
तुम्हीं भर देते हो प्याला !

आत्म-समर्पण

चाटें चतुर चेतना लेकर,
कर दो मुझे अचेत,
बस सञ्चालित करे तुम्हारा
इङ्गित या सङ्केत,
उपजाओ अपने मन के फल,
प्रस्तुत है यह खेत,
जिसमें अपने हाथों तुमने
है इतना मधु डाला ।
तुम्हीं भर देते हो प्याला ॥

———

क्षुद्र भावना

यही होता है जगदाधार !
छोटा सा घर आँगन होता
इतना ही परिवार ।

छोटा खेत द्वार पर होता
स्वजनों का समवाय,
थोड़ा-सा व्यय होता मेरा
थोड़ी-सी ही आय,
घर ही गाँव, गाँव ही मेरा
होता सब संसार,
यही होता है जगदाधार !

क्षुद्र भावना

कहीं न कोई शासक होता
और न उसका काम,
होता नहीं भक्त ही तू भी
रहता केवल नाम,
दया धर्म होता बस घट में
जिस पर तेरा प्यार,
वही होता है जगदाधार !

गाता हुआ गीत ऐसे ही
रहता मैं स्वच्छन्द,
तू भी जिन्हें स्वर्ग से सुनकर
पाता परमानन्द,
होते यन्त्र न तन्त्र और ये
आयुध पात अपार,
वही होता है जगदाधार !

झंकार

होता नहीं क्रान्ति कोलाहल,
शान्ति खेलती आप,
जैसा आता बस वैसा ही
जाता मैं चुपचाप,
स्वजनों में ही चर्चा छिड़ती
सो भी दिन दो चार,
यही होता है जगदाधार !

कामना

हरे ! तुम्हारी करुणा-धारा
तारा-हाराकारा,
धोती रहे धरा के धब्बे,
बहे ग्लानि-भ्रम सारा।
जीवन-सुधा पिये यह वसुधा,
रहे अवाधि न खारा ;
प्रेम-दृष्टि सविवेक दृष्टि हो—
सृष्टि एक परिवारा ।

झंकार

हरे भरे सब क्षेत्र निहारें

हम निज नेत्रों द्वारा,

मुक्ति-शुक्तियाँ फलें निरन्तर,

तके स्वर्ग बेचारा।

मनोमीन हो जाय मग्न, हाँ,

रहे न कूल-किनारा,

स्वयं शान्त हो सब तृष्णाएँ,

घट भर जाय हमारा।

बाँसुरी

यह बाँसुरी ही बाँस की,
है साक्षिणी तेरी सरस—
संजीवनी-सी साँस की ।

क्या मन्त्र फूँका कान में,
बस, बज उठी यह आन में !
उस गान में, उस तान में,
मानो गमक थी गाँस की,
यह बाँसुरी ही बाँस की ।

कैसी करारी कूक थी !
आह्वान-युक्ति अचूक थी;
उठती हृदय में हूक थी—
फिर-फिर उसी की फाँस की;
यह बाँसुरी ही बाँस की ।

मृदु अँगुलियाँ बचती रहीं,
ध्वनि-धार पर नचती रहीं,
श्रुति-सृष्टि-सी रचती रहीं,
क्या है कुशलता काँस की ?
यह बाँसुरी ही बाँस की ।

निस्सारता हरकर हरे,
वे छिद्र सब तू ने भरे ।
क्या स्वर-सुधा-निर्झर झरे !
मैं बलि गई उस आँस की ,
यह बाँसुरी ही बाँस की ।

आहट

तेरी स्मृति के आघातों से
छाती छिलती रहे सदा,
चाहे तू न मिले, पर तेरी
आहट मिलती रहे सदा।

हाल यहाँ से मैं हट आऊँ,
जहाँ न तेरी आहट पाऊँ;
कोलाहल से भी छट जाऊँ,
झंझट-झिलती रहे सदा;
चाहे तू न मिले, पर तेरी
आहट मिलती रहे सदा।

वीणा की बहु झंकारों में,
धनुषों की शत टङ्कारों में,
और असंख्य अहङ्कारों में,
डोरी हिलती रहे सदा;
चाहे तू न मिले, पर तेरी
आहट मिलती रहे सदा।

काँटे सुई बनें, जब झाड़ी
आ जावे यात्रा में आड़ी;
तेरे गुण-सूत्रों से साड़ी
सज कर सिलती रहे सदा;
चाहे तू न मिले पर तेरी
आहट मिलती रहे सदा।

आहट

नही इयत्ता अभिलाषा की,
इतनी ही गति है भाषा की,
तेरे मिलने की आशा की
कलिका खिलती रहे सदा;
चाहे तू न मिले पर तेरी
आहट मिलती रहे सदा।

माला

वड़े यत्न से माला गूँथी,
किसे इसे पहनाऊँ?
वरण करूँ मैं जिसे प्रेम से,
उसे कहाँ मैं पाऊँ?

काँटों में ये फूल खिले थे,
बड़े कष्ट से मुझे मिले थे,
चुनने जाकर अङ्ग छिले थे,
अब मैं इनके योग्य अनोखा
पात्र कहाँ से लाऊँ,
बड़े यत्न से माला गूँथी,
किसे इसे पहनाऊँ?

माला

अरे खोजती हूँ मैं किसको ?
मैं ही क्यों न पहन लूँ इसको,
श्रम करके गूँथा है जिसको,
पर निज मुख से निज कर-चुम्बन-
कर किस भाँति अघाऊँ,
बड़े यत्न से माला गूँथी,
किसे इसे पहनाऊँ ?

खोज

आँख मिचौनी में तुम प्यारे,
पलक मारते छिपे कहाँ ?
थक कर हार गई हूँ यह मैं
तुम्हे खोजकर जहाँ तहाँ।

फिर भी हार मानने मे क्यों
होता है सङ्कोच ।
मेरी लज्जा ही में तुम क्या
छिप बैठे यह सोच ?
हार मानने ही में तब तो
होगी मेरी जीत यहाँ;
आँख मिचौनी में तुम प्यारे,
पलक मारते छिपे कहाँ ?

खोज

फिर भी फिर भी लगती है क्यों
दारुण लज्जा हाय !
उठती नहीं आँख ही अपनी,
अब है कौन उपाय ?
करके गर्व कहा था मैं ने—
तुम्हें खोज कर रहूँ न हाँ !
आँख मिचौनी मे तुम प्यारे,
पलक मारते छिपे कहाँ ?
अपने को तो देखें दृग फिर
करें तुम्हारी चाह,
दर्पण ओर उठी आँखें तो
उनमे तुम थे वाह !
देखा जहाँ आप अपने को
तुम्हीं दिखाई दिये वहाँ !
आँख मिचौनी में तुम प्यारे,
पलक मारते छिपे कहाँ ?

आँख मिचौनी

अच्छी आँख मिचौनी खेली,
बार बार तुम छिपो और मैं
खोजूँ तुम्हे अकेली ।

किसी शान्त एकान्त कुञ्ज में
तुम जाकर सो जाओ,
भटकूँ इधर उधर मैं, इसमें
क्या रस है बतलाओ,
यदि मैं छिपूँ और तुम खोजो
अनायास ही पाओ,
कहो नही तुम जहाँ छिपूँ मैं
जाने भी दो आओ ।
करें बैठ रंग-रेली,
अच्छी आँख मिचौनी खेली ।

पर जब तुम हो सभी कहीं तब
मैं ही क्यों यों भटकूँ,
चाहूँ जिधर उधर ही अपना
भार पटक कर सटकूँ,
इसकी भी क्या आवश्यकता
जो बाहर पर अटकूँ,
अन्तर के ही अन्धकार में
क्यों न पीत पट लटकूँ।
बन अपनी ही चेली,
अच्छी आँख मिचौनी खेली।

वञ्चिता

आँख मिचौनी की क्रीड़ा में
सचमुच तू ने मुझे छला,
तू ने या मैं ने ही मुझको,
क्या बतलाऊँ इसे भला?

वञ्चिता

आँख मूँद कर देख रही थी
मैं तुमको ही प्यारे,
कैसे वर्णन करूँ भाव वे
नटखट, न्यारे न्यारे।
जब आँखें खोली तब दीखे
दृश्य यहाँ के सारे,
किन्तु दिखाई दिया न फिर तू
हारे दोनों तारे।

कौन जानता था मायावी,
तेरी ऐसी कुशलकला,
आँख मिचौनी की क्रीड़ा में
सचमुच तू ने मुझे छला।

झंकार

यदि फिर भी मैं पलक गिराऊँ
तो क्या तुझको पाऊँ,
हेर हेर वह भ्रुकुटि हास्य फिर
वेर वेर बलि जाऊँ ?
डरती हूँ यह दृश्यमान भी
अब के मैं न गवाँऊँ,
नहीं जानती हूँ कि क्या करूँ
और कहाँ अब जाऊँ ?

तुझे पुकारूँ भी तो कैसे ?
भर आया है हाय गला !
आँख मिचौनी की क्रीड़ा मे
सचमुच तू ने मुझे छला ।

भूल भुलैयां

लूँ मैं सौ सौ बार बलैयां,
धन्य तुम्हारी भूल भुलैयां ।

खेल नहीं, अपने को भी मैं,
भय है, भूल न जाऊँ सैयां ।
अबकी निकलूँ, फिर न घुसूँगी
भूली, देख घनी बमछैयां ।
धन्य तुम्हारी भूल भुलैयां ।
अटक रही मैं इधर उधर हा,
भटक न भूलें मेरी गैयां,
माधो, दैयाँ पकड उबारो
लाओ, पडूं तुम्हारी पैयां ।
धन्य तुम्हारी भूल भुलैयां ॥

ज्ञान और भक्ति

मैं यों ही भटकी हे आली !
मिले अचानक वनमाली ।

उन्हे स्वप्न में देख रात को
प्रातःकाल चली मैं,
और खोजती हुई उन्ही को
घूमी गली गली मैं ।
कितनी धूल छान डाली,
मैं यो ही भटकी हे आली !

उनके चिन्ह अनेक मिले पर
वे न दिये दिखलाई,
नगर छोड़ कर सन्ध्या तक मैं
निर्जन वन में आई।
वहाँ शून्यता ही साली,
मैं यों ही भटकी हे आली !

कितनी ही विभीषिकाओं ने
मुझको वहाँ डराया,
अन्धकार में दानव बन कर
वृक्षों ने मुँह बाया।
ऊपर घिरी घटा काली !
मै यों ही भटकी हे आली !

साहस करके चली गई मैं
किन्तु कहाँ तक जाती,
पैर थके, सूझा न पन्थ भी
धड़क उठी यह छाती।
थी बयार या व्याली,
मैं यों ही भटकी हे आली !

आँख मूँद कर चिल्लाई तब—
"कहाँ छिपे हो बोलो ?"
करस्पर्श-युत सुना उसी क्षण—
"तुम आँखें भी खोलो।
ओ मेरी मतवाली !"
मैं यों ही भटकी हे आली !

"सुनो, खोजता है जो मुझको
कहीं नहीं पाता है,
यह पुकारना किन्तु आपही
मुझे खींच लाता है।"
हुई अहा ! उजियाली,
मैं यों ही भटकी हे आली !

छलना

चोर चोर !
घर के पीछे हो उठा शोर।

मैं जाग पड़ी,
हो गई खड़ी,
फिर चौंकी ज्यों चौंके चकोर।
चोर चोर !

अति घबराई,
बाहर आई,
बस अन्धकार था सभी ओर।
चोर चोर !

दृष्टि विफल थी,
मुझे न कल थी,
घन थे, बिजली की थी न कोर।
चोर चोर !

जग सोता था,
नभ रोता था,
मैं हुई वृष्टि से सराबोर।
चोर चोर !

वायु प्रबल थी,
उथल पुथल थी,
घर घर करता था घोर शोर।
चोर चोर !

झंकार

सुध हुई अहा !
घर खुला रहा !
लौटूँ जब तक हो गया भोर ।
चोर चोर !

छल हुआ अरे,
मैं लुटी हरे !
बस सन्नाटा छागया घोर ।
चोर चोर !

यह हँसी कहाँ ?
तुम कौन यहाँ ?
यह वञ्चकता कैसी कठोर !
चोर चोर !

यथाशक्ति

जो मुझसे हो सका, किया,
यह लो, तिल तिल तलस्नेह से
दीपक मैं ने जला दिया।

पर कर इस प्रकाश के भ्रम में,
मैं पड़ गई और भी भ्रम से;
सौ तिमिरों ने एकक्रम से
उठकर मुझको घेर लिया!
जो मुझसे हो सका, किया।

आगे-पीछे, दायें बायें,
घेर रही हैं सौ छायायें;
नींदें दे विलीन हो जायें,
कर दो ऊँचा ठौर-ठिया।
जो मुझसे हो सका, किया

वायु चल रहा है अति बल से,
घात हो रहा है जल-थल से;
ओट किये हूँ मैं अञ्चल से,
धड़क रहा है किन्तु हिया;
जो मुझसे हो सका, किया।

कैसे मैं मन्दिर तक आऊँ ?
इसको यथास्थान पहुँचाऊँ ?
स्वयं न झोंकों में उड़ जाऊँ ?
काँप रहा है दीन दिया!
जो मुझसे हो सका, किया।

अचल करो इसको, अपनाओ;
इसमें ऐसी ज्योति जगाओ,
जिसमें प्रिय, तुम देखे जाओ,
और रूप-रस जाय पिया।
जो मुझसे हो सका, किया।

असावधाना

अब जागी—अरी अभागी!
अब जागी? सोने की सोई,
अब रोने को जागी!

जिनकी रही स्वप्न की रेखा,
आये प्रिय प्रत्यक्ष, न देखा,
निरख, [illegible] हैं [illegible];
हे [illegible] अनुरागी;
अब जागी—अरी अभागी!

झंकार

झुक, धीरे कोमल कर फेरा,
जागा पुलक भाव भर तेरा,
बस सुहाग का हुआ सवेरा,
गूँजा राग विहागी,
अब जागी—अरी अभागी !

सुख-संस्मरण और भी दुख है,
कहता-सा सम्मुख वह मुख है-
"इसको सपने का ही सुख है"
तब भी नींद न भागी !
अब जागी—अरी अभागी !

सपने को तो सच्चा माना,
सच्चे को खो दिया, न जाना।
अब तो दोनों को पहचाना,—
त्याग गये जब त्यागी ?
अब जागी—अरी अभागी !

असावधान

किधर गये क्या जानें, अब वे,
मार्ग देख, लौटें फिर जब वे,
एक ठौर ठहरे हैं कब वे,
सब उनके अनुरागी,
अब जागो—अरी अभागो !

आई उषा, अहा, क्या लाई ?
उनकी श्वास-सुरभि फिर आई !
तेरी व्यथा विश्व में छाई ।
वही विश्व के भागी,
अब जागो—अरी अभागो !

कुहक

घूम रही थी मैं निर्जन मे,
प्रान्तर और गहन में ।

हरे-भरे खेतो का मेला,
उनमें खुले पवन की खेला,
खिली सुनहली सन्ध्या वेला,
उठी तरङ्गें मन मे,
घूम रही थी मैं निर्जन मे ।

यह भू-लोक और नभ नीला,
क्या सब है माया की लीला ?
बोल उठी कोकिल कलशीला—
"कुहक कुहक" कर वन में !
घूम रही थी मैं निर्जन मे ।

रवि-किरणों में है विविध वर्ण;
कल-राग-पूर्ण है लोक-कर्ण।
कुसुमाङ्कित है द्रुम-गुल्म-पर्ण:
अर्णव-अचला मे मणि-सुवर्ण।
    सब में तेरा रस है अभङ्ग;
    तेरे कर मे है कौन रङ्ग?

पुलकित, पराग-रञ्जित समीर,
हो रहा तरङ्गित तरल नीर,
उड़ता है अम्बर में अबीर,
है नया प्रकृति का चारु चीर।
    मेरे उर में भी है उमङ्ग,
    तेरे कर मे है कौन रङ्ग?

रङ्ग-ढङ्ग

तेरे छींटों से आज मित्र,
यह मेरा पल्ला हो पवित्र।
ये धब्बे हैं या सुमन-चित्र,
मैं मनन करूँ जिनके चरित्र।
समझूँ कुछ तेरे रङ्ग ढङ्ग,
तेरे कर में है कौन रङ्ग?

———

विश्वास

थे, हो और रहोगे जब तुम
थी, हूँ और सदैव रहूँगी (मैं)
कल निर्मल जल की धारा-सी
आज यहाँ कल वहाँ वहूँगी (मैं)
मार्ग-वक्रता और विषमता
आगे बढ़ती हुई सहूँगी (मैं)
पाकर तुम्हें कभी न कभी तो
अपने मन की बात कहूँगी (मैं)

——

उत्कण्ठिता

दूती ! बैठी हूँ सज कर मैं ।
ले चल शीघ्र मिलूँ प्रियतम से,
धाम धरा धन सब तज कर मैं ॥

धन्य हुई हूँ इस धरती पर,
निज जीवनधन को भज कर मैं ।
बस अब उनके अङ्क लगूँगी,
उनकी वीणा-सी बज कर मैं ॥

बस, बस

बस, बस, अरे हरे, बस, आहा !
तनिक ठहर जा,—हा हा !
उठा न हूक लूक मुरली की,—
हो न जाय सब स्वाहा !

बस बस

उठ उठ कर गिर रही गोपियाँ
ब्रज की गली गली मे,
बुरी बात हो जाय न कोई
भावुक, भली भली मे।
खलभल खलभल खेल रही है
यह कल भाप नली मे,
झुलस न जायँ अँगुलियाँ तेरी
लगे न कीट कली में !

दीवट-सी जल उठे न जगती
पाकर नभ का फाहा !
बस, बस, अरे हरे, बस आहा!
तनिक ठहर जा, हा हा!

सम्मुख पड़े कहीं कोकिल तो
वहीं कण्ठ कट जावे,
क्या जाने इस ध्वनि-धारा मे
कहाँ कौन तट जावे।
कितना है यह अम्बर जिसमे
स्वर-समूह अट जावे,
देख दीन ब्रह्माण्ड न घट-सा
उपट कही फट जावे।

कान्ह! प्रेम के बदले तू ने
कब का वैर निवाहा?
बस, बस, अरे हरे, बस आहा!
तनिक ठहर जा, हा हा!

बस बस

झेलेगा ये कौन प्रलय की
लय में सम के झटके ?
तुझे छोड़ सरपट हय सहसा
रोकें कर किस झटके ?
कब ऐंगे कल्लोल कूल पर
किस प्रवाह ने पटके,
तड़प रहे हैं प्राण शफर से
इस वंशी में अटके ।

भला वेदना—तड़पा—फेनिल
राग-सिन्धु लहराता ;
बस, बस, धीरे हूँ, बस आता !
तनिक ठहर जा, हा हा !

उफने सप्त सिन्धु रस विष के
सात स्वरों में तेरे,
तीनों लोक तीन ग्रामों में—
उथल पुथल से हेरे।
काले ! तेरी एक फूँक में—
मैं क्या कहूँ अरे रे !
कोटि मूर्च्छनाएँ जगती हैं
तन में मन में मेरे।

गुण का हो, पर तू ने हम पर
यह कैसा गिरि ढाहा !
बस, बस, अरे हरे, बस आहा !
तनिक ठहर जा, हा हा ?

बस बस

हा ! इससे तो यही भला है
तू जो शंख बजावे,
जिसका सीधा एक "जूझना"
अर्थ समझ में आवे ।
गदा-चक्र भी पद्म-तुल्य है
जीव मुक्ति झट पावे,
अब भी सँभली नहीं सृष्टि जो
वेणु-वृष्टि रह जावे ।

दया सिन्धु आहें पर तू ने
मानस अभी न चाहा !
बस, बस, और हरे, बस, आहा !
तनिक ठहर जा, हा हा !

विष बरसाती हुई बाँसुरी
हाँ, पीयूष पिलाती,
मार मार फिर मारण-कारण
बारंबार जिलाती।
गुंजाग्रथित भिल्लिनी तुझको
यह आखेट खिलाती,
खेद खदेड़ मनोमृग मेरा
धर झकझोर हिलाती !

तुझे प्यार करके अपने से
मैंने बैर बिसाहा।
बस, बस, अरे हरे, बस आहा !
तनिक ठहर जा, हा हा !

बस, बस

गोल कपोलों पर कुण्डल की
गोल लटक लटकाती,
हिलती हुई अलक फाँसी का
फन्दा-सा अटकाती।
यह अधखुली पलक की प्रतिमा
हृदय खोल खटकाती,
रोम रोम की झटक झार-सी
मुरली मुँह मटकाती।

नागर नट, क्या इसीलिए है
मैं ने तुमको चाहा ?
बस, बस, अरे हरे, बस आहा !
तनिक ठहर जा, हा हा !

पंक्ति-सूची

अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया !	१०६
अच्छी आँख मिचौनी खेली ।	१३८
अब जागो—अरी अभागी !	१५३
अरे डराते हो क्यों मुझको	५९
अहो अखिल अन्तर्यामी !	७१
आओ, हृदय-दोल पर झूलो ।	५२
आया इस चोले का प्रसङ्ग ।	१५७
आया यह दीन आज चरण-शरण आया ।	४२
आँख मिचौनी की क्रीड़ा में	१४०
आँख मिचौनी में तुम प्यारे,	१२६
इस शरीर की सकल शिराएँ हों तेरी तन्त्री के तार,	१२
कहो तो क्रय-विक्रय होजाय ।	६९
कुछ न पूछ, मैंने क्या गाया,	१६
घूम रही थी मैं निर्जन में ।	१५६

चोर चोर ! १४८
जीगया मैं, जीगया । ७४
जीव, हुई है तुझको भ्रांति; ३१
जीवन-यात्रा के आतप से ४८
जो मुझसे हो सका, किया । १५१
ठहर, तनिक ठहर आह ! ओ प्रवाह मेरे ! ८७
तुम्हारी वीणा है अनमोल । १४
तुम्हीं भर देते हो प्याला । १२२
तू ही ऊँचा कर सकता है ५४
तू ही बुद्धि-विजेता है । ७७
तू है हम अन्धों का हाथी । ६३
तेरी स्मृति के आघातों से १३१
तेरे गीतों की गुंजार, ८५
तेरे घर के द्वार बहुत हैं किसमें होकर आऊँ मैं ? १०९
त्याग न तप केवल यह तू वो ४७
थे, हो और रहोगे जब तुम १६०
दूती ! बैठी हूँ सजकर मैं । १६१

दूँगा सब मैं न्यारे न्यारे ७२
देना पड़ा वही जो लाया, हाँ, मैं हाट देख आया। ९३
ध्यान न था कि राह में क्या है, ९६
नटनागर, आज कहाँ अटके ? ५१
नहीं, मुझे सन्तोष नहीं। २९
निकल रही है उर से आह ११९
निर्बल का बल राम है। ११
प्यारे, तेरी माया ! ६७
प्यारे, तेरे कहने से जो यहाँ अचानक मैं आया। १००
प्रभो, तुम्हें हम कब पाते हैं ? ४३
बड़े यत्न से माला गूँथी १३४
बस, बस, परे हरे, बस आहा ! १६२
बहु बन कण्टकों के आश्रय, ३४
मरा काल के हाथ, ७६
मिल क्या जाकर रीते हाथ ? १२०
मुसकी मीठी से तुमने हँस ६४
मैं निकला जाता हूँ इस अँधेरी रात में। ४०

मैं यों ही भटकी हे आली ! १४५
यह बाँसुरी ही बांस की, १२९
यही होता हे जगदाधार ! १२४
रमा है सब में राम । २१
रोको मत, छेड़ो मत कोई मुझे राह मे, ३८
लूँ मैं सौ सौ वार बलैयाँ, १४३
वह बाल-बोध था मेरा । १८
बार बार तू आया । ११३
सखे, मेरे बन्धन मत खोल । २५
संसार कब से मुग्ध होकर मर रहा है ८०
सौ सौ ज्ञान-तंतुओं के मैं ९०
हम में है मचा संघात । ६२
हरे ! तुम्हारी करुणा-धारा तारा-हाराकारा, १२७
हरे राम, क्या कहूँ अवश यह अंग हुआ; ८३
हे भगवान ! ६०

श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त के काव्य-ग्रन्थ

भारत-भारती	मूल्य	१)	सजिल्द	१॥)
जयद्रथ-वध	,,	॥)	,,	१)
रंग में भंग	...		...	।)
शकुन्तला	...		...	।=)
किसान	...		...	।=)
पत्रावली	..		...	।–)
वैतालिक	...		...	।)
चन्द्रहास	...		(नाटक)	।।।)
तिलोत्तमा	...		,,	॥)
पंचवटी	...		...	।=)
अनघ	...		(गीति नाट्य)	।।।)
स्वदेश-संगीत	.		...	।।।)
त्रिपथगा	..		.	१॥

(वक-संहार, वन-वैभव, सैरन्ध्री अलग-अलग भी छपे हैं)

[illegible]	..		..	।)
हिन्दू		१)	सजिल्द	[illegible])
गुरुकुल			.	[illegible]

श्रीसियारामशरण गुप्त रचित काव्य

मौर्य्य-विजय	...	...	।)
अनाथ	...	...	।)
आर्द्रा	...	...	१)
विषाद	...	...	।-)

अनुवादित काव्य-ग्रन्थ

पलासी का युद्ध (श्रीनवीनचन्द्रसेन)	१॥)
मेघनाद-वध (श्रीमाइकेल मधुसूदनदत्त)	२॥)
वीरांगना ,,	१)
विरहिणी-व्रजांगना ,,	।)
चित्रांगदा (श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर)	।=)

फुटकर ग्रन्थ

सुमन (पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी)	१)
हेमला सत्ता (मुंशी अजमेरी)	।-)
रेणु (श्रीरामचन्द्र टंडन)	।-)
गीता-रहस्य (गीता की सरल व्याख्या)	२॥)

साहित्य-मणि-माला की दूसरी पुस्तक

"अंकुर" छप रही है।

पता—प्रबन्धक,

साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)